© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 1 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

श्रीमद्भगवद्गीता की प्रासङ्गिकता

पूनम शुक्ला,

शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का सारतत्त्व है। गीता धर्म का अभिप्राय मानवमात्र का आत्मोत्थान है, केवल तात्त्विक विचार परिवर्त्तनमात्र नहीं। गीता का मुख्य प्रतिपाद्य है, "निष्काम कर्मयोग"। वस्तुतः कर्म करना ही व्यक्ति की नियति है। प्रत्येक प्राणी जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त कर्म करता है। मानव योनि कर्मयोनि है। वस्तुतः आसक्तिंशून्य कर्म ही कर्मबन्धन परम्परा का शिथिलीकरण करके मूलोच्छेद में सक्षम हो सकता है। किन्तु वर्तमान में मनुष्य की किसी कर्म के प्रति प्रवृत्ति तभी होगी, जब उस कर्म के फल की कामना उसके हृदय में विद्यमान हो। जबकि गीता में कर्म को साधन के रूप में नहीं अपितु साध्य के रूप में प्रतिपादित किया गया है। वर्तमान में इच्छा एवं स्वार्थ के अधीन होकर मनुष्य में उचित–अनुचित के विचार का सर्वथा अभाव (विवेकशून्यता) हो गया है। आधुनिक युवावर्ग पूर्णतः दिग्भ्रामित हो चुका है। आज उनकी प्रवृत्ति अनाचार, दुराचार, आदि कार्यों में हो रही है। उनकी प्रवृति सन्मार्ग पर करने हेतु ही गीता के सिद्धान्त प्रतिपादित किए गए हैं। विपरीत परिस्थितियों में युवा–वर्ग के लिए अपनी समस्याओं का समाधान हमें इसी नीतिशास्त्र, आचारशास्त्र में प्राप्त होता है। व्यक्ति विशेष को उपदेश देकर भगवान् श्रीकृष्ण ने गीतोपनिषद् में सार्वभौमिक सिद्धान्त का ही प्रवर्तन किया है, जिसकी उपयोगिता एवं प्रासङ्गिकता अद्यावधि पर्यन्त बनी हुई है।

गीतोपनिषद् की प्रासङ्गिकता का प्रतिपादन करते हुए श्री वेदव्यास जी ने स्वयं प्रतिपादित किया है –

"गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्राविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।"

कहने का अभिप्राय यह है कि स्वयं पद्मनाभ भगवान् विष्णु के मुखारविन्द से निःसृत गीतोपनिषद् को विधिवत् भावसहित अन्तःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है।

श्रीमद्भगवद्गीता जो समस्त उपनिषदों का सार है, गाय के तुल्य है, और ग्वालबाल के रूप में विख्यात भगवान् श्रीकृष्ण इस गाय के दोग्धा है, अर्जुन बछड़े के समान है और समस्त विद्वज्जन एवं शुद्धभक्त भगवद्गीता के अमृतमय दुग्ध का पान करने वाले हैं।[1] आज मानव जीवन की समस्त चिन्ताओं से मुक्ति का एकमात्र साधन गीता के उपदेशों का अनुकरण मात्र है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने आत्म विनाश के तीन कारण बताए हैं, जिन्हें उन्होंने नरक के द्वार की संज्ञा दी है। ये तीन कारण हैं, काम, क्रोध तथा लोभ।[2] आज जब हम सामाजिक परिदृश्य की ओर दृष्टिपात करते हैं, तो समाज की विविध विसङ्गतियों बुराईयों के मूल में यही तीन तत्त्व विद्यमान हैं,। आज भ्रष्टाचार का दानव

राष्ट्र के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। भ्रष्टाचार व्यक्ति की असीम धन पिपासा का परिणाम है, जिसका मूल कारण है, 'लोभ'। इसी प्रकार समाज में असहिष्णुता का जो वातावरण बना है, उसके मूल में क्रोध है। क्रोध के कारण ही आज पति–पत्नी, पिता–पुत्र, भाई–भाई, भाई–बहन आदि रिश्ते क्रोध की भेंट चढ़ गये हैं। समाज में काम अर्थात् विषयोपभोग की कामना के पूर्ण न होने से क्रोध जनित दुष्परिणाम होते हैं। यदि समाज काम, क्रोध और लोभ को नियन्त्रित कर लें तो निश्चिंत रूप से वर्तमान की तमाम बुराईयाँ स्वतः समाप्तप्राय हो जाएंगी।

गीता में त्याग की महत्ता का भी प्रतिपादन किया गया है। गीता के अनुसार सर्वकर्मफल त्याग को ही विद्वज्जन त्याग की संज्ञा देते हैं। उपनिषदों में भी "त्यागेनैकेन अमृत्त्वमानशुः" कहकर त्याग को अमृतत्त्व का कारण बताया गया है। किन्तु आज समाज में त्याग की नहीं अपितु ग्रहण की प्रतिष्ठा है। लोग बिना किसी स्वार्थ के किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होते। कर्तव्यबुद्धि का सर्वत्र अभाव देखा जा रहा है। केवल अपने शरीर के पोषण के लिए जो अन्न पकाते हैं, वे वस्तुतः पाप खाते हैं।[3] यह कहकर गीता ने समाज को त्याग परक जीवन जीने का सन्देश दिया है। स्वामी विवेकानन्द ने भी कहा है कि "हमारे दुःख का मूल कर्म नहीं, आसक्ति है।[4]" अतः आसक्ति को समाप्त कर जीवन में अनासक्ति एवं समता को धारण करें, इसी में कल्याणकारी शक्ति निहित है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी इस सन्दर्भ में कहा गया है कि 'तू निरन्तर आसक्ति रहित होकर करणीय कर्म को सम्यग्प्रकारेण करता रहा, क्योंकि आसक्ति रहित कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।[5]

वर्तमान काल में समाज में जातिवाद संज्ञक जो बीमारी है, वह समाज को खोखला कर रही है। लोग जाति के नाम पर सबसे बड़ा इन्सानियत का रिश्ता भूल गये हैं। हमारे देश में धनलोलुप नेताओं ने जातिवाद का बीज वपन कर समाज को अनेक टुकड़ों में विभक्त कर दिया है। व्यक्तिगत स्वार्थ एवं सत्ता की महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु वे देशवासियों को जातिवाद के नाम पर बाँट रहे हैं। इस मुश्किल समय में गीतोपनिषद् ही हमारा पथ प्रदर्शन कर सकती है। गीता में वर्ण का विभाजन जन्म के आधार पर नहीं था अपितु उसका आधार गुण और कर्म है।[6] गीतोपनिषद् के अनुकरण से हम जातिवाद के जहर से समाज को बचा सकते हैं। भगवान् बृजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ने स्वयं अर्जुन से कहा है कि, "ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के कर्म स्वभाव से उत्पन्न गुणों द्वारा विभाजित किये गए हैं।[7]

श्रीमद्भवद्गीता में यदुनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ब्राह्मणों के कर्म[8] क्षत्रियों के कर्म,[9] वैश्यों के कर्म[10] तथा शूद्रों के कर्मों[11] का क्रमशः प्रतिपादन करते हुए अन्ततः यह स्पष्ट करते हैं कि वर्णों के विभाजन का आधार जाति न होकर केवल गुण एवं कर्म मात्र थे। किन्तु सम्प्रति समय के साथ ही वर्ण व्यवस्था में विकृति के फलस्वरूप जातिवाद का रूप धारण कर लिया। और इसी के फलस्वरूप क्षेत्रवाद एवं सम्प्रदायवाद की तुच्छता ने लोगों का बाटने का काम किया है। ये तुच्छ मानसिकता आज इन्सानियत, की दुश्न हो गयी है। लोग आज भूल चुके हैं कि इन्सानियत से बड़ा कोई रिश्ता नहीं है। आज समाज में प्रबुद्ध वर्ग एवं राजनेताओं ने अपनी स्वार्थ के सिद्धि हेतु आडम्बर रचकर इस साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया है।

आज समाज के बुद्धि जीवी वर्ग का यह उत्तरदायित्व है कि समाज को सही दिशा में ले जाय। आज हमारे देश में बड़े–बड़े बाबा लोग सन्त–महात्माओं का वेश बनाकर ठगी कर रहे हैं। स्वयं अनैतिक आचरण में लिप्त होकर भी दूसरों को ज्ञान का उपदेश प्रदान कर रहे हैं। भक्त जनों को अन्ध भक्ति की ओर प्रेरित कर रहे हैं। किन्तु जब उनका असली चेहरा समाज के सामने आता है तो जो लोग सच्चे सन्त हैं, वे उनकी विश्वनीयता पर भी आक्षेप लगता है। आज समाज में नैतिक मूल्यों का पतन होने से समाज भी अनैतिकता की

ओर बढ़ रहा है। गीता में कहा भी गया है कि 'मनुष्य समुदाय श्रेष्ठ पुरुषों के आचरण का अनुकरण करता है तथा उन्हें ही प्रमाण मानता है।'[12] अतएव समाज के बुद्धि जीवी वर्ग का यह दायित्व है कि समाज को सन्मार्ग पर प्रवृत्त कराने हेतु वे श्रेष्ठ आचरण करें। यदि राष्ट्र के कर्णधार गीतोपनिषद् के सन्देश का अनुसरण करें तो निःसन्देह हमारा राष्ट्र एक मौलिक राष्ट्र बन सकेगा। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि आज हमारा राष्ट्र जिस जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद की अग्नि में दग्ध हो रहा है, उससे मुक्ति हमें गीतोपनिषद् के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकती है।

महात्मा गाँधी ने भी कहा है कि "जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है और जब नितान्त एकांकी अनुभव करता हूँ, मुझकों प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखाई देती, तब मैं गीता की शरण लेता हूँ।"[13] आज मनुष्य का मन अशान्त है। इस दुःख से निवृत्ति हेतु मानव सतत प्रयत्नरत है। मनुष्य सुख–शान्ति की इच्छा रखता है। किन्तु कोई भी सांसारिक सुख शाश्वत नहीं होता है। सांसारिक सुखों के प्रति आसक्ति ही दुःख का मूल कारण है। गीता में इस सन्दर्भ में प्रतिपादित है कि "इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करने से उनमें मनुष्य की आसक्ति हो जाती है। आसक्ति होने से (उन विषयों के भोग की) कामना उत्पन्न होती है और कामना न पूरी होने से विघ्न उत्पन्न होता है।[14] अतः सासांरिक सुखों की आसक्ति ही व्यक्ति को विवेकशून्य कर देती है। श्रीमद्भगवद्गीता में आसक्ति को त्यागकर अनासक्ति एवं समता को धारण करना ही श्रेयस्कर माना गया है। यदुनन्दन कहते हैं "इसलिए तू निरन्तर अनासक्ति से अपना कर्तव्य कर्म सदैव कर, क्योंकि फल में आसक्ति छोड़कर कार्य करने वाला पुरुष परमगति को प्राप्त करता है।"[15]

अतएव यदि आज समाज गीतोपनिषद् का अनुशीलन करें तो अज्ञानजन्य मोहान्धकार को नष्ट करने में सक्षम होगा। अनासक्त कर्म करने से सुख की ओर आसक्ति एवं दुःख के समय विवेकशून्यता न होगी। तथा विषय परिस्थितियों में भी हम अपने अन्तःकरण को शान्त रख सकेंगे।

सन्दर्भ :

1. सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
   पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतम् महत्।।
2. काम एष क्रोध एष रजो गुणसमुद्भवः।
   महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिदृ वैरिणम्।।– (गीता– 3/137)
3. भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।– (गीता–3/13)
4. स्वामी विवेकानन्द–कर्मयोग–रामकृष्णमठ (नागपुर), पृ–89
5. तस्मादक्तः सततं कार्य कर्म समाचार।
   असक्ता ह्याचारन्कर्म परमाप्नोति पूरूषः।। (श्रीमद्भगवद्गीता– 3/19)
6. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं सुणेर्मविभागशः।
   तस्य कर्तारमपि मां विद्धूयकर्तारमव्ययम्।। (गीता– 4/13)
7. ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।।
   कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।। गीता (18/42)
8. शमो दमस्तपः शौचः क्षान्तिरार्जवमेव च।
   ज्ञानविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्।। गीता (18/42)
9. शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायम्।
   दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। गीता (18/43)
10. कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभाचजम्। गीता (18/44)

11. परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।। (गीता– 18/44)
12. यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तन्तदेवेतरोजनः।
स यत्प्रमाणं कुरूते लोकस्तदनुवर्तते।। (गीता– 3/21)
13. मोहनदास कर्मचन्द्र गाँधी–यंग इण्डिया (1925)
14. ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेपूषपजायते।
सङ्गनत्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।– गीता (2/62)
15. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचार।
असक्तो ह्वचरन्कर्म परमाप्नोति पूरूषः।। (गीता–3/19)

———0———